१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका

क्षेत्र, काल और अन्तर प्ररुपणाओंमें जो जीवके क्षेत्र व कालसम्बन्धी नाना परिवर्तन बतलाये गये है वे विशेष कर्मबन्ध द्वारा ही उत्पन्न हो सकते हैं ˚ वे कर्मबन्ध कौनसे हैं, उन्हींका व्यवस्थित और पूर्ण निर्देश इस चूलिकामें किया गया हैं यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण

वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, इस क्रमसे आठ प्रधान कर्मोका स्वरुप बतलाया गया है और फिर उनकी क्रमशः पांच नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच प्रकृतियां बतलाई गयी हैं नामकी ब्यालीस प्रकृतियोंके भीतर चौदह प्रकृतियां ऐसी हैं जिनकी पुनः क्रमशः चार, पांच, पांच, पांच, पांच, छह, तीन, छह, पांच, दो, पांच, आठ, चार, और दो, इस प्रकार पैसंठ उत्तरप्रकृतियां हो गई हैं; ततएव नामकर्मके कुल भेद ६५ + २८ = ९३ हुए, जिनसे आठों कर्मोकी समस्त उत्तरप्रकृतियां एकसौ अडतीलीस (१४८) हुई हैं इसमें ४६ सूत्र हैं जिनका विषय आग्रायणोय पूर्वकी चयनब्धिके अन्तर्गत महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके सातवें अधिकार बंधनके बन्धविधान नामक विभागान्तर्गत समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है१(चूलिया णाम किं ? एक्कारसअणिओगददारेसुंसूइदत्थस्सविसेसियूण पूरवणा चूलिर्या खुददाबंध अन्तिम सहादंडक, उक्ताऊक्तदुरुक्तचिन्ततं चूलिर्का गो.कं३९८ टीका.)

२. स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका

प्रकृतियोंकी संख्या व स्वरुप जान लेनेके पश्चात यह जानना आवश्यक होता है कि उनमेंसे प्रत्येक मूलकर्मकी कितनी उत्तरप्रकृतियां संभव है यह विषय स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें समझाया गया हैं यहां सूत्रोंमें गुणस्थाननिर्देश चोदह विभागोंमे न करके केवल संक्षेपके लिये छह विभागोंमे किया गया है --- मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयर्त इनमें प्रथम पांच तो गुणस्थान क्रमसे ही हैं, किन्तु अन्तिम विभाग संयतमें छठवे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके यथासंभव सभी गुणस्थानोंका अन्तरभाव है जिनका उपपत्ति सहित विशेष स्पष्टीकरण धवलाकारने किया हैं ज्ञानावरणकी पांचो प्रकृतियोंका एक ही स्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी उन पांचो ही का बंध करते हैं दर्शनावरणके तीन स्थान हैं पहले स्थानमे मिथ्यादृष्टि और सासादन जीव है जो समस्त नौं ही

प्रकृतियोंका बंध करते हैं दूसरेमे सम्यग्मिथ्थादृष्टि आदि संयत तकके जीव हैं जो निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृध्दि, इन तीनको छोड शेष छह प्रकृतियोंका ही बंध करते हैं तीसरे स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल, इन चार दर्शनावरणोंका ही बंध करते हैं वेदनीयका एक ही बंधस्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टीसे लेकर संयत तक सभी जीव साता और असाता इन दोनों वेदनीसयोंका बंध करते हैं मोहनीय कर्मके दस बन्धस्थान हैं पहले स्थानमें मिथ्यादृष्टि जीव हैं जो एक साथ बंध योग्य वाईस ही प्रकृतियोंका बंध करते हैं यहां इस बातका ध्यान रखना

विषय-परिचय

चाहिये कि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दो प्रकृतियोंका तो बंध होता ही नहीं है, वे तो सम्यक्त्व उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वके तीन टूकडे हो जानेसे सत्वमें आ जाती हैं तथा तीन वेदों और हास्य - रति व अरति - शोक इन दो युगलोंमेंसे एक साथ एक ही का बंध सम्भव होता हैं मोहनीयके दूसरे बंधस्थानमे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं जो उपर्युक्त बाईसमेंसे एक नपुंसकवेदको छोड शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बंध करते हैं तीसरे स्थानमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं जो उक्त इक्कीसमेंसे चार अनन्तानुबंधी कषायों व स्त्रीवेदको छोड शेष सत्तरहका बंध करते हैं चौथे स्थानमें संयतासयत जीव हैं जो चार अप्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नहीं करते, केवल शेष तेरहका करते हैं पांचकें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चार प्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नही करते, पर शेष नौका करते हैं छटवे स्थानमें वे संयत जीव हैं जो मोहनीयकी अन्य प्रकृतियोंको छोड केवल चार संज्वलन और पुरुषवेद, इन पांचका ही बंध करते हैं सातवे स्थानमें वे संयत है जो क्रोध संज्वलनको छोड शेष तीनका ही बंध करते हैं नौवें स्थानवाले वे संयन हैं जो मान संज्वलनका भी बंध करना छोड देते है व केवल शेष दो का बंध करते हैं दशवे स्थानमें केवल लोभ संज्वलनका बंध करनेवाले संयत हैं

आयुकर्मकी चारों प्रकृतियोंके अलग चार बंधस्थान है --- एक नरकायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिका ; दूसरा तिर्यंचायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिका ; तीसरा मनुष्यायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादन व असंयतसम्यग्दृष्टिका ; और चौथा देवायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत व संयतकां यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुको नहीं बांधतां

नामकर्मके बंधयोग्य प्रकृतियोंकी संख्याके अनुसार आठ बंधस्थान है जिनमें क्रमश: ३१, ३०, २९, २८, २६, २५, २३ और १ प्रकृतियोंका बंध किया जाता हैं इन स्थानोंका चार गतियोंके अनुसार इस प्रकार निरुपण किया गया है --- नरकगति और पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव २८ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६२) तिर्यचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अथवा सासादन जीव एवं तिर्यचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टी जीव भिन्न प्रकारसे ३० प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६४, ६६, ६८) तिर्यचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि एवं तिर्यचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७०, ७२, ७४) तिर्यचगति सहित एकेन्द्रिय वादर पर्याप्त और आताप

या उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २६ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७६) तिर्यचगति सहित एकेन्द्रिय पर्यात्प और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ, अथवा त्रस एवं अपर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २५ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७८,८०) तिर्यंचगति सहित एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २३ प्रकृतियां बांधता है (सूत्र ८२) मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय और तीर्थंकर प्रकृतियोंको बांधता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि, जीव ३० प्रकृतियोंका बंध करता हैं मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तको बांधता हुआ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, सासादन व मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सू. ८७, ८९, ९१) मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय अपर्याप्तको बांधता हुआ मिथ्यादृष्टि २५ प्रकृतियोंका बंध करता है (सू ९३) देवगति सहित पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, आहारक और तीर्थकर प्रकृतियोंको बांध करता हुआ अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव ३१ प्रकृतियोंको बांधता है (सू.९६) वही जीव तीर्थकर प्रकृतिको छोडकर ३० का एवं आहारकको भी छोडकर २९ का बंध करता है (सू. ९८, १००) देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीर्थकरको बांधता हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतायंत जीव भी २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सू. १०२) देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अथवा मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासयंत व संयत जीव २८ प्रकृतियोंका बंध

करता है (सू. १०४, १०६) जब संयत जीव यश:कीर्तिका बंध करता है तब केवल इस एक नामप्रकृतिका ही बंध होता है (सू. १०८) इस प्रकार यद्यपि एक साथ बंधनेवाली प्रकृतियोंकी संख्याकी अपेक्षा नामकर्मके आठ बंधस्थान हैं तथापि संस्थान, संहनन एवं विहायोगति आदि सात युगलोंके विकल्पोंसे बंधस्थानोंके भेद कई हजारोंपर पहूंच गये हैं (देखो सू. ८९, ९१)

गोत्रकर्मके केवल दो ही बंधस्थान हैं मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नीचगोत्रका और शेष उच्चगोत्रका और शेष उच्चगोत्रका बंध करते हैं

अन्तरायकर्मका केवल एक ही बंधस्थान है क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी जीव पांचों ही अन्तरायोंका बंध करते हैं

इस चूलिकाका विषय भी प्रथम चूलिकाके समान महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके बंधविधानके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया हैं इसकी सूत्रसंख्या ११७ हैं

३. प्रथम महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें केवल दों सूत्र है जिनमेंसे एकमें ऐसी प्रकृतीयां बतलानेकीं प्रतिज्ञा की गई है जिन्हें प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाला जीव बांधता है, और दूसरे सूत्रमें वे प्रकृतियां गिनाई गई हैं तथा यह भीं प्रकट कर दिया गया है कि उनका स्वामी मनुष्य या तिर्यंच होता हैं इन प्रकृतियोंकी संख्या ७३ हैं विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त जींव आयुकर्मका बंध नही करता, एवं असाता व स्त्री-नपुंसकवेदादि अशुभ प्रकृतियोंको भी नहीं बांधतां धवलाकारने यहां अपनी व्याख्यामे सम्यक्त्वोन्मुख जीवके किस परिणामोंमे किस प्रकार विशुध्दता बढती है और उससे किस प्रकार अशुभतम, अशुभतर व अशुभ प्रकृतियोंका क्रमश: बंधव्युच्छेद होता है इसका विशद निरुपण किया है (देखो पृ. १३५-१३९), और अन्तर्मैायोपशम आदि पांच लब्धियोंके निर्देश करनेवाली गाथाकी उदधृत करके चूलिका समाप्त की हैं

४. द्वितिय महादंडक चूलिका

जिस प्रकार पयम दंडकर्ते तिर्यच और मुनष्य प्रथमसम्यक्त्वोन्मुख जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां बतलाई हैं, उसी प्रकार इस दूसरे महादंडकमें प्रगथमसम्पक्त्वके अभिमुख देव और प्रथमादि छह पृथिवियोंके नारकी जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां गिनाई गई हैं यहाँ भी सूत्रोंकी संख्या केवल दो ही हैं

५. तृतिय महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें सातवी पृथिवीके नारकी जीवोंके सम्यक्त्वाभिमूख होने पर बंध योग्य प्रकृतियोकां निर्देश किया गया हैं

उपर्युक्त तीनों दंडकोका विषय भी उपर्युक्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया हैं

६. उत्कृष्टस्थिति चूलिका

कर्मोका स्वरुप व उनके बंध योग्य स्थानोंका ज्ञान हो जानेपर स्वभावत: यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक बार बांधे हुए कर्म कितने काल तक जीवके साथ रह सकते हैं, सब कर्मोका स्थितिकाल बराबर ही हैं या कम बढ़ व सब जीव सब समय एक ही समान कर्मस्थिति बांधते हैया भिन्न भिन्न, एवं बंध होते ही कर्म अपना फल दिखाने लगते हैया कुछ काल पश्चात ? इन्हीं प्रश्नोंके उत्तर आगेकी दो अर्यात उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें यह बतलाया गया हैं कि भिन्न भिन्न कर्मोका अधिकसे अधिक बंधकाल कितना हो सकता है और कितने कालकी उनमें आबाधा हुआ

करती है अर्थात बंध होनेके कितने समय पश्चात उनका विपाक प्रकट होता हैं इस कालनिर्देशकें लिये आगे दी हुई तालिका देखियें आबाधाका सामान्य नियम यह है कि प्रत्येक कोडाकोडी सागरके बंधपर एक सौ वर्षोकी आबाधा होती हैं जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय व अन्तराय कर्मोका उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोडाकोडी सागरोपमोंका है तो इसी परसे जाना जा सकता है, कि उक्त कर्म बंध होनेसे तीन हजार वर्षोके पश्चात उदयमे आवेंगें पर यह नियम आयुकर्मके लिये लागू नहीं होता क्योंकि वहां अधिकसे अधिक आबाधा अधिकसे अधिक भुज्यमान आयुके तृतीय भागप्रमाण ही हो सकती है (देखो सू. २९ टीका) जिन कर्मोकी स्थिति अन्त: कोडाकोडी सागरोपमकी है उनकी आबाधाका प्रमाण एक अन्तर्मुहुर्त माना गया है (देखो सू. ३३-३४) इस प्रकार आबाधाकालको छोड़कर शेष समस्त कर्मस्थितिकालमें उन कर्मोका निषेक अर्थात उदयमें आकर गलन होता है जिसकी प्रक्रिया धवलाकारने गणितके नियमानुसार विस्तारसे समझाई हैं इसमें आबाधाकाण्डक और नानागुणहानि अदि प्रक्रियायें ध्यान देने योग्य हैं (देखो

सू. ६ टीका) इस चूलिकाकी सूत्रसंख्या ४४ है जिनके विषयका संग्रह महाकर्मप्रकृतिके बंधविधानान्तर्गत स्थिति अधिकार अर्धच्छेंद प्रकरणसे किया गया हैं

७. जघन्यस्थिति चूलिका

जिस प्रकार उपर्युक्त उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें कर्मोकी अधिकसे अधिक स्थिति व आबाधा आदिका विवरण दिया गया है, उसी प्रकार जघन्यस्थिति चूलिकामें कर्मोकी कमसे कम संभव स्थिति व आबाधा आदिका ज्ञान कराया गया है यंहा धवलकारने आदिमें ही उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंके कर्मबंधोंके कारण इस प्रकार बतलाया है कि परिणामोंकी उत्कृष्ट विशुद्विसे जो कर्मबंध होता है उसमें स्थिति जघन्य पड़ती है और जितनी मात्रामें परिणामोंमें संक्लेशकी वृध्दि होती है उतनी ही कर्मस्थितिकी वृध्दि होती हैं असाता बंधकेयोग्य परिणामको संक्लेश कहते हैं और साताबंधकेयोग्य परिणामको विशुद्वि दुसरे आचार्योने जो उत्कृष्ट स्थितिसे नीचे नीचेकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको विशुद्वि और जघन्यस्थितिसे ऊपर ऊपरकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको संक्लेश कहा है, उसे धवलाकार ठीक नहीं समझते, क्योंकि वैसा माननेपर तो जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंधयोग्य परिणामोंको छोंड कर मध्यम स्थितियों सम्बन्धी समस्त परिणाम संक्लेश और विशुध्दि दोनों कहे जा सकते हैं, और लक्षणभेदकेबिना एक ही परिणामको दो भिन्न रू प माननमें विरोध

विषय परिचय

आता हैं उन्होंने कषायवृध्दिको भी संक्क्लेशका लक्षण मानना उचित नहीं समझा, क्योंकि, विशुद्विकामें भी तो कषायवृध्दि होना संभव है और उसीसे सातावेदनीय आदि कर्मोका भुजाकार बंध होता हैं ध्यान देने योग्य बात एक और यह है कि छठवें गुणस्थान तक जिस असातावेदनीय कर्मका बंध होता हैं उसकी जघन्य स्थिति एक सागरोपमके लगभग ३/७ भागप्रमाण होती है और जो सातावेदनीय कर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानकेअन्तिम समयमें बांधा जाता है उसका भी जघन्य स्थितिबंध १२ मुंहूर्तमात्र जघन्य स्थिति पर आ जाता है, पर शुभ बंध होनेके कारण सातावेंदनीय कर्मकी विशुध्दिकेद्वारा भी उतनी अपवर्तना नहीं हो पार्ती (देखो सू. ९ टीका)

सूत्रोंमें प्रकृति और स्थिति ब्रंधका विचार तो खूब हूआ, पर प्रदेश और अनुभाग बंधका कहीं परिचय नहीं कराया गया ? इसका समाधान धवलाकारने जघन्यस्थिति चूलिकाके अन्तमें

किया है कि उक्त प्रकृति और स्थिति बंधकी व्यवस्थासे ही प्रदेश व अनुभाग बंध व्यवस्था निकल आती है जिसे उन्होंने वहां समझा भी दिया हैं उसी प्रकार उन्होंने सत्त्व, उदय और उदीरणाका स्वरुप भी बंधप्ररुपणाकेआधारसे समझा दिया हैं

इस चूलिकामें ४३ सूत्र है और यह विषय उत्कृष्टस्थिति चूलिकाके समान अर्धच्छेद प्रकरणसे लिया गया हैं

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका

इस चूलिकाको इस समस्त ग्रंथका प्राण कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगां यहां सूत्र केवल १६ ही हैं पर उनमें संक्षेपरुपसे यह महत्त्वपूर्ण समस्त विषय बडीं ही सावधानीसे सूचित कर दिया गया हैं यह विषय चार अधिकारोंमें विभाजित हैं पहले सात सूत्रोंमें यह बतलाया गया है कि होई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने परिणामोंकी विशुध्दता बढ़ाते हुए क्रमश: समस्त कर्मोंकी स्थितिको घटाते घटाते जब अन्त:कोडाकोडी प्रमाणसे भी कम कर लेता है तब फिर वह एक अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वका अवघटटन करता है, अर्थात उसकी अनूभागशक्तिको घटा कर उसका अन्तरकरण करता है, जिससे मिथ्यात्वको तीन भाग हो जाते हैं सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यार्त्वं बस, यहीं उस जीवको प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती हैं

आगेके तीन सूत्रोंमे (८-१०) समस्त दर्शतमोहनीयकर्मके उपशमनके अधिकारी जीवका निर्देश किया गया है, जिसमें कहा गया है कि यह क्रिया चारों गतियोंका कोई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोत्पन्न पर्याप्तक जीव कर सकता हैं

षटखंडागमकी प्रस्तावना

फिर आगे सूत्र ११ में दर्शनमोहकेक्षपणका प्रारंभ करने योग्य स्थान और परिस्थितिको बतलाया है कि अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंकी केवल उन पन्द्रह कर्मभूमियोंमें दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ किया जा सकात हैं जहां जिन भगवान केवली व तीर्थकर विद्यमान हों और १२ वें सूत्रमें यह कह दिया है कि एक वार उक्त परिस्थितिमें क्षपणाकी स्थापना करके उनसकी निष्ठापना अर्थात पूर्ति चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें की जा सकती हैं ऐसे क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके उन्मुख

होता है तब वह आयुकर्मको छोंड शेष सात कर्मोकी स्थितिको अन्त:कोडाकोडी प्रमाण कर लेता हैं यदि सम्यक्त्वके साथ साथ चारित्र अर्थात्र देशचरित्र भी ग्रहण करता है तो भी वह जीव सातों कर्मोकी स्थिति अन्त:कोडाकोडी प्रमाण करता हैं यह अन्त:कोडाकोडी धवलाकारके स्पष्टीकरणानुसार पूर्वसे बहुत हीन होती हैं

आगे के सूत्र १५ और १६ में सकलचारित्र ग्रहणकी योग्यता बतलाई गयी हैं कि उस समय जीव चारों घातिया कर्मोकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त कर लेता हैं, किन्तु वेंदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त एवं शेषकी स्थिति भिन्न मुहूर्त करता हैं

सूत्रकारके इस संक्षेप निर्देशको धवलाकारने इतना विस्तार दिया है और विषयको इतनी सूक्ष्मता, गम्भीरता और विशालताके साथ समझाया है जितना यह विषय और कहीं प्रकाशित सहित्यमें अब तक हमारे देखनेमें नहीं आर्या लब्धिसारका विवेचन भी इसके सन्मुख बहुत स्थूल दिखने लगता हैं

धवलाकारने पहले तो पांचो लब्धियोंका स्वरूप समझाया हैं (पृ. २७४) और फिर सम्यक्त्वके अभिमुख जीव के कितनी प्रकृतियोंकी सत्ता सहती हैं, उनमें कितनी कैसा अनुभाग रहता है, किन प्रकृतियोंका उदय रहता है व चारों गतियोंमें इनमें कितना क्या भेद पड़ता है, इसका खुब खूलासा किया हैं (पृ. २०७-२१४) इसके पश्चात अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंकी विशेषता समझाई है (पृ. २१५-२२२) सूत्र ५ के आश्रयसे उन्होंने यह बात विस्तारसे बतलाई है कि उक्त परिणामोंमें विशुध्दि बढ़नेके साथ साथ कर्मोका स्थिति व अनुभाग घात किस प्रकार व किस क्रमसे होता हैं (पृ २२२-२३०) फिर मिथ्यात्वके अवघटटन या अन्तकरणकी क्रिया समझाई है व उपशम सम्पक्त्व उत्पन्न होने तक गुणश्रेणी व गुणसंक्रमणादि कार्य बतलाये हैं, तथा पूर्वोक्त समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व पच्चीस पदोंके दंडक द्वारा बतलाया है (पृ २३१-२३७)

क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य क्षेत्र व जीवका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने यह बतलाया है कि जिन जीवोंका पन्द्रह कर्मभुमियोंमें ही जन्म होता है, अन्यत्र नहीं, वे ही

४. क्षपणाके योग्य होते हैं, और चूंकि तिर्यंच उक्त कर्मभूमियोंके अतिरिक्त स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें भी उत्पन्न होते हैं, इससे तिर्यंचमात्र क्षपणाके योग्य नहीं ठहरते (पृ २४४-२४५)˚ यद्यपि जिस कालमें जिन, केव्रली व तीर्थंकर हों वही काल क्षमणाकी प्रस्थापनाके योग्य होत है ऐसा कहनेसे केव्रल दुषमासुषमा काल ही इसके योग्य ठहरता है, पर कृष्णादिकके तीसरी पृथ्वीसे निकलकर तीर्थंकरत्व प्राप्त करनेकी जो मान्यता है उसके अनुसार सुषमादुषमा कालमें भी दर्शनमोहका क्षपण किया जा सकता हैं (पृ. २४६-२४७) आगे दर्शनमोहके क्षपण करनेके आदिमें अनन्तानुबंधी विसंयोजनसे लगाकर जो स्थितिवंधापसरण, अनुभागबंधापसरण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात व गुणश्रेणीं संक्रमण आदि कार्य होते हैं वे खूब विस्तारसे समझायें हैं (पृ. २४८-२६६) और फिर वे ही कार्य देशचारित्र सहित सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवालेके किस विशेषताको लेकर होते हैं यह बतलाया है (पृ. २६८-२८०) वे ही कार्य सकलचारित्रकी प्राप्तिमें किस विशेषतासे होते हैं यह फिर आगे बतलाया है (पृ. २८१-३१७) इससे आगे उपशांतकषायसे पतन होनेका क्रमवार विवरण दिया गया हैं (पृ. ३१७-३३१) और फिर पूर्वोक्त जो पुरुषवेद और क्रोधकषाय सहित श्रेणी चढ़नेका विधान कहा हैं उसमें अन्य कषायों व अन्य वेदोंसे चढनेपर क्या विशेषता उत्पन्न होती हैं यह बतलाया है (पृ. ३३२ -३३५) तत्पश्चात श्रेणी चढ़नेसे उतरने तककी समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व कहा गया हैं (पृ. ३३५-३४२)

अब चारत्रिमोहकी क्षपणाका विधान आता हैं जिसमें अपूर्वकरण गुणस्थानसें लेकर समय समयकी क्रियाओंका विशद और सूक्ष्म निरुपण किया गया हैं और क्रमश: आठ कषाय व निद्रानिद्रादिकका संक्रमण, मन:पर्ययज्ञानावरणादिकका बन्धसे देशघातिकरण, चार संज्वलन ओर नौ नोकाषायोंका अन्तरकरण तथा नपुंसक व स्त्रीवेद तथा सात नोकषायोंका संक्रमण बतलाया गया हैं (पृ. ३४४-३६४) इसके आगे अश्वकर्णकालका निरुपण है जिसमें चारों कषायोंके स्पर्ध्दकों और फिर उनके अपूर्वस्पर्ध्दकों तथा उनकी वर्गणओंमें अविभागप्रतिच्छेदोंका वर्णन किया गया हैं (पृ. ३६४-३३८) इसके पश्चात अश्वकर्णकरण कालके प्रथम, द्वितिय व तृतिय समयके कार्योंका अल्पबहुत्व, अनुभागसत्वकर्मका अल्पबहुत्व व अपूर्वस्पर्ध्दकोका अल्पबहुत्व देकर अयवकर्णकरणके अन्तर्मुहूर्तकालका विधान समाप्त किया गया हैं (पृ. ३६९-३७३) यंहा अश्वकर्णकरणकालके अन्तमें कर्मोंके स्थितिबन्धका प्रमाण बतलाकर कृष्टिकरणकालका विधान समझाया गया हैं जिसमें प्रथमसमयवर्ती कृष्टियोंकी तिव्र -मंदताका अल्पबहुत्व, कृष्टियोंके

अन्तरोंका अल्पबहुत्व, कृष्टीयोंके प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररुपणा और कृष्टिकरणकालके अन्त समयमें संज्वलनादि कर्मोंके स्थितिबन्धका निरुपण खूब विशद हुआ हैं (पृ. ३७४-३८१) कृष्टिकरणकालमें पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका वेदन होता हैं, कृष्टियोंका नहीं जब कृष्टिकरणकाल समाप्त हो जाता हैं, तब

षटखंडागमकी प्रस्तावना

उनके वेदनका काल प्रारंभ होता है, जिसमें कृष्टियोंके बन्ध, उदय, अपूर्वकृष्टिनिर्माण, प्रदेशाग्रसंक्रमण, एवं सूक्ष्मसाम्परायकृष्टियोंका निर्माण किया जाता है (पृ. ३८२-४०६)

यह जो विधान बतलाया गया है वह क्रोध कषाय व पुरुषवेदसे उपस्थित होनेवाले जीवका हैं अब आगे क्रमसे मान, माया व लोभ तथा स्त्रीवेद व नपुंकसवेदसे उपस्थित हुऐ क्षपककी विशेषताएं बतलाई गई हैं (पृ. ४०७-४१०) यह सब सूक्ष्मसाम्पराय तकका कार्य हुआ जिसके अन्तमें कर्मोंके स्थितिबंधका प्रमाण बतलाकर आगे क्षीणकषाय गुणस्थानमें होनेवाले घातिया कर्मोंकी उदीरणा, निद्रा - प्रचलाके उदय और सत्वका व्युच्छेद तथा अन्तमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंके सत्त्व व उदयके व्युच्छेदका निर्देश करके सयोगकेवलो गुणस्थान प्राप्त कराया गया हैं (पृ. ४१०-४१२)

सयोगी जिन सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हुए एवं असंख्यातगुणश्रेणी द्वारा प्रदेशाग्रनिर्जर करते हुए विहार करते हैं व आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर वे केवलिसमुध्दात करते हैं जिसकी दंड, कपाट, मंथ (प्रतर) लोकपूरण क्रियाओंमें होनेवाले कार्य बतलाये गये हैं (४१२-४१४) इसके पश्चात मन, वचन और काय योगोंके निरोधका विधान हैं सूक्ष्मकायका निरोध करते समय अन्तर्मुहूर्त तक अपूर्वस्पर्ध्दककरण और फिर अन्तर्मुहूर्त तक कृष्टिकरण क्रियायें भी होती है जिनके अन्तमें योगका पूर्णत: निरोध हो जाता है और सर्व कर्मोंकी स्थिति शेष आयुके बराबर हो जाती हैं बस, यहीं जीव अयोगी हो जाता हैं जहां सर्व कर्माश्रवका निरोध, शैलेशी वृत्ति एवं समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति शुल्कध्यान होता हैं इस अन्तर्मुहूर्तके द्विचरम समयमें ७३ और अन्तिम समयमें शेष १२ प्रकृतियोंकी सत्ताका विनाश हो जानेसे जीव सर्व कर्मसे वियुक्त होकर सिध्द हो जाता हैं

सूत्रकारने यह विषय दृष्टिवादके पांच अंगोंमेसे द्वितिय अंग सूत्रपरसे संब्रह किया हैं (पुस्तक १, पृ.१३०, व प्रस्तावना पृ. ७४) धवलाकारने उसका जो विस्तार किया है उसके आधारका यद्यपि उन्होंने स्पष्टीकरण नहीं किया, पर मिलानसे निश्चयत: ज्ञात होता है कि उन्होंने वह कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंसे लिया हैं यथार्थत: बहुतायसे उन्होंने उक्त चूर्णिसूत्रोंको ही जैसाका तैसा उदधृत किया है जैसा कि प्रस्तुत चूलिकामें जगह जगह दी हुई टिप्पणियोंपरसे ज्ञात हो सकेगां

९. गत्यागति चूलिका

इस चूलिकाके चार विभाग किये जा सकते हैं पहले ४३ सूत्रोंमें भिन्न नारकी तिर्यंच, मनुष्य व देव निबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण व वेदना इन चारमेंसे किन किन

विषय परिचय

कारणों द्वारा व कब सम्पक्त्वकी प्राप्ति करते है इसका प्ररुपण किया हैं आगे सूत्र ४४ से ७५ तक उक्त चारों गतियोंमें प्रवेश करने और वहांसे निकलनेके समय जीवके कौन कौन गुणस्थान होना संभव है इसका निर्देश किया गया हैं सूत्र ७६ से २०२तक ह बतलाया गया है कि उक्त गतियोंसे भिन्न भिन्न गुणस्थानों सहित निकलकर जीव कोन कौनसी गतियोंमें जा सकता हैं फिर सूत्र २०३ से अन्तिम सूत्र २४३ तक यह बतलाया गया है कि उक्त चार गतियोंके जीव उस उस गर्तिसे निकलकर जिन अन्य गतिमें जावेंगे वहावे कौन कौनसे गुण प्राप्त कर सकते हैं ये चारों विषय आगे चार पृथक तालिकाओंमे स्पष्ट कर दियें गये हैं अतएव उनके विषयमें यहां विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं हैं

यह गत्यागतिका विषय सूत्रकारने दृष्टिवादके पांच अंगोंमें प्रथम अंग परिकर्मके चन्दप्रज्ञाप्त आदि पांच भेदोंमेंके अन्तिम भेद विहायपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति) से ग्रहण किया हैं (पुस्तक १ पृ. १३०)

पान नं. ३२

२. स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकानुसार स्थनक्रमसे प्रकृतियोंका बन्ध

१०. मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५. ज्ञानावरणीय ; ९. दर्शनावरणीय ; २ वेदनीय; मिथ्यात्व; १६ कषाय, अन्यतम वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक; भय और जुगुप्सा, ये २२ मोहनीय ; ४ आयु; नरकगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र ६१) अथवा तिर्यचगति आदि ३०,२९,२६,२५, या २३ नामकर्म (सूत्र ६६-८३) अथवा मनुष्यगति आदि २९ या २५ नामकर्म (सूत्र ९१-९४) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६); नीच या उच्च गोत्र ; और ५ अन्तरार्यं

११. सासादन जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; ९ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; १६ कषाय, स्त्री व पुरुष वेदमेंसे अन्यतर वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा, ये २१ मोहनीय ; नारकायुको छोड शेष ३ आयु; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८९) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६) ; नीच या उच्च गोत्र; और ५ अन्तरार्यं

१२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवद्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय, अप्रत्याख्यानादि १२ कषाय, पुरुषवेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा ये १७ मोहनीय; यहां आयुबन्ध होता नहीं; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८७) ; उच्च गोत्र; और ५ अन्तरार्यं

१३. असंयतसमयग्दृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादिको छोड शेष ६ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय; मिश्रके अनुसार १७ मोहनीय; मनुष्य और देव आयु; मनुष्यगति आदि ३० नामकर्म (सुत्र ८५-८६) अथवा २९ नामकर्म (सुत्र ८७) अथवा देवगति आदि २९ नामकर्म (सुत्र १०२) ; उच्च गोत्र और ५ अन्तरार्यं

१४. संयतासंयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय एवं मिश्रके अनुसार शेष ५, ये १३ मोहनीय; देवायु; देवगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र १०२) ; उच्च गोत्र; और ५ अन्तरार्यं

१५. संयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय सूक्ष्मसाम्पराय तर्कं निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक, तथा निद्रानिद्रादि ५ को छोड़ शेष ४ अपूर्वकरके द्वितिय भागसे लेकर सूक्ष्मसामपराय तर्कं असातावेदनीय प्रमत्तसंयत तक, तथा सातावेदनीय सयोगी तर्कं ४ संज्वलन कषाय एवं मिश्रके अनुसार पुरुषवेदादि ५ ये ९ मोहनीय प्रमत्तसे लेकर अपूर्वकरण तक, एवं ४ संज्वलन और पुरुषवेद ये पांच मोहनीय अनिवृत्तिकरण तक; तथा इसी गुणस्थानमे क्रमश: पुरुषवेदरहित ४ संज्वलन, क्रोध संजवलनको छोड केवल ३ संज्वलन, एवं क्रोधमानको छोड केवल २ संज्वलन, सूक्ष्मसाम्परायमें केवल एक लोभसंज्वलन मोहनीर्यं देवायु अप्रमत्त गुणस्थान तर्कं देवगति आदि ३१,३०,२९ या २८ नामकर्म अप्रमत्त व अपूर्वकरण संयतके (सुत्र ९६-१०४), यश कीर्ति नामकर्म अपूर्वकरणके ७ वे भागसे सूक्ष्मसाम्पराय संयत तर्कं उच्च गोत्र सूक्ष्मसाम्पराय तर्कं ५ अन्तराय सूक्ष्मसाम्पराय तर्कं

विषय सूची

प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१६.	धवलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञां	

१७. शंका-समाधानपूर्वक चूलिकाका अवतार
व उसके भेदोंका निरुपर्ण

३. प्रकृतिसमुत्कीर्तनकी प्रतिर्ज्ञां

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदोंका निर्देश
तथा मूलप्रकृति व उत्तरप्रकृतिका लक्षर्णं

२. ज्ञानावरणीयका निर्देश तथा अव्रियमाण
और आवारक का निरुपर्णं

३. दर्शन व दर्शनावरणीयका लक्षण व
दर्शनका ज्ञानसे पृथक्त्वप्ररुपर्णं

7. वेदनीयका निरुपण

८. मोहनीयका निरुपर्णं

१. आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय
कर्मोंका निरुपर्णं

१०. ज्ञानावरणीयके पांच भेदोंका निर्देर्शं

११. अभिनिबोधिक ज्ञानका स्वरुप व
उसके अवग्रहादि भेद-प्रमेदोंका निरुपर्णं

१२. श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञानावरणीयका
लक्षण व श्रुतज्ञानके वीस भेदोंका
निरुपण

क्रम नं. विषय

लक्षण तथा अवधिज्ञानके तीन भेदोंका
निर्देश

१. मति-श्रुतज्ञानोंसे अविधज्ञानकी भिन्नता
बतलाकर उसकी प्रत्यक्षताका निरुपण

२. मन:पर्ययज्ञान व उसकेभेद तथा
अवधि और मन:पर्यय ज्ञानोंका वैशिष्टर्य

३. केवलज्ञान और केवलज्ञानावरणीयका
स्वरू प एवं केवलीकेमतिज्ञानादि चार
ज्ञानोंकेअभावका निरुपण

४. दर्शनावरणीयकेनौ भेदोंका एवं दर्शन
व उसकेभेदोंका निरुपण

५. दर्शनकेस्वरुपमें भिन्न मतोंका दिग्दर्शन
और उनका खण्डन

६. सातावेदनीय व असतावेदनीयका
लक्षण, उन दोनोंकेअभावमें सुख-
दु:खाभावरुप आशंकाका समाधान और
सातावेदनीयका जीव-पुदगल-विपकि-
त्वनिरुपण

५. क्रम नं. विषय

७. मोहनीय कर्मकेअटठाईस
भेदोंका निरुपण, दर्शनमोहनीयका
स्वरुप और बन्ध व सत्वकी उसका
वैशिष्टर्य

८. सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और

सम्यग्मिथ्यात्वका निरुपण

९. चारित्रमोहनीयके भेद - प्रभेद
व उनके भिन्न भिन्न लक्षण

२३. आयुकर्मके भेद व उनका लक्षर्ण
२४. नामकर्मकी व्यालीस पिण्ड--
प्रकृतियोंका पृथक पृथक
लक्षणनिरुपण
१. गति व जाति नामकर्मोके भेदोंका
निरुपण

२६. शरीर नामकर्मके भेदोंका निरुपर्ण
२७. बन्धनके भेद
२८. संघातके भेद

१. संस्थान नामकर्मके भेद व उनके लक्षर्ण

२. अंगोपांग नामकर्मके भेद व उनके लक्षर्ण

३. संहनन नामकर्मके भेद व उनके लक्षण

४. वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श नामकर्मके भेदोंका निरुपण

६. ्रमि न्नं. विषय
५. आनुपूर्वी आदि नामकर्मके भेदोंका निरुपण

६. गोत्र और अन्तराय कर्मके खेदोंका निरुपर्ण
स्थानसमुत्कीर्तनचूलिका

१. स्थानसमुन्कीर्तनकी प्रतिज्ञा

२. बन्धकस्थानोंके भेदं

१८. ज्ञानावरणीयकी पांच प्रकृतियोंका निर्देश व उनके एक बन्धस्थानका निरुपण ं

१९. दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थानोंका निरुपण ं

५. वेदनीयके एक बन्धस्थानका निरुपणं

६. मोहनीय कर्मके दश स्थानोंका निरुपणं

७. आयुकर्मके बन्धस्थान ं

८. नामकर्मके अठठाईस प्रकृति-सम्बन्धी स्थान ं

९. तिर्यग्गति नामकर्मके पांच स्थान ं

१०. मनुष्यगति नामकर्मके पांच स्थानं

११. देवगति नामकर्मके पांच स्थानं

१२. गोत्र कर्मके बन्धस्थान ं

१. अन्तरायकी पांच प्रकृति योंका एक बन्धस्थान ं

विषय-सूची

७. क्रमि न्नं. विषय

प्रथममहादण्डकचूलिका

१. प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए
जीवके बध्यमान प्रकृतियोंके
किर्तनकी प्रतिज्ञा ं

२. प्रथमसम्यक्त्वीके द्वारा बध्यमान
प्रकृतियोंका निर्देश ं
सम्यक्त्वभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि
जीवके प्रकृतियोंके बन्धव्युच्छित्ति-
क्रमका निरुपण ं

द्वितीयमहादण्डकचूलिका

१. प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख देव और

नारकीकेबध्यमान प्रकृतियोंका निरुपर्णं

तृतीयमहादण्डकचूलिका

२०. प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख सप्तम पृथ्विवीकेनारकी द्वारा बध्यमान प्रकृतियोंका निर्देश

उत्कृष्टस्थितिचूलिका

१. उत्कृष्टस्थितिकेकथनकी प्रतिर्ज्ञां

२१. पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय,असातावेदनीय और पांच अन्तरायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका निरुपण

८. क्रम नं. विषय

२२. उपर्युक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

९. आबाधा तथा आबाधाकाण्डकोंका

१०. निरुपण

२३. आवाधासे हीन कर्मस्थितिप्रमाण

११. कर्मनिषेकका निरुपण

२४. उत्कृष्ट स्थितिमें प्रदेशरचनाक्रमको

१२. बतलाते हुए गुणहानि आदिका निरुपर्णं

२५. सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और

१३. मनुष्यगतिप्रयोग्यानुपूर्वीकी

१४. उत्कृष्ट स्थर्ती

१५. ७. उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबार्धां

१६. ८. मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति व आबाधाका

१७. प्रमार्णं

१८. ९. सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध व

१९. उसकी आबाधा

२. पुरुषवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति-

२०. बन्ध व उसकी आबाधा
३. नपुंसकवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट
२१. स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा
४. नारकायु व देवायुका उत्कृष्ट
२२. स्थितिबन्ध व उसकी आबार्धा
२३. क्रम नं. विषय
२४. तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट
२५. स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा
५. द्वीन्द्रियादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट
२६. स्थितिबन्ध व उनकेआबाधाप्रमाणको
२७. बतलाते हुए इच्छित निषेकोकेभाग
२८. हारकेनिकालनेका विधार्न
६. आहारकशरीर, आहारकशरीरांगीपांग
२९. और तीर्थकर प्रकृतिकेउत्कृष्ट स्थिति-
३०. बन्धका निरुपण
७. उक्त तीनों प्रकृतियोंकेआबाधाकालका
३१. प्रमाण
८. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रना-
३२. राचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व
३३. आबाधा
९. स्वतिसंस्थान और नाराचसंहननका
३४. उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा
१०. कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहननका
३५. उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा
३६. जघन्यस्थितिचूलिका

२६. जघन्यस्थितिकेकहनेकी प्रतिज्ञा तथा
३७. संक्लेश व विशुद्धिपर विचार

३८. क्रम नं. विषय

३९. पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण,

४०. संज्वलनलोभ एवं पांच अन्तरायोंका

४१. जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा

२७. पांच दर्शनावरण और असा तावेदनीयका

४२. जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा

२८. सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध

४३. व आबाधा

२९. मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध व

४४. आबाधा

३०. अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका

४५. जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा

३१. संज्वलन क्रोध, मान और मायाका

४६. चघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा

३२. पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध व

४७. आबाधा

३३. स्त्रीवेदाविप्रकृतियोंका जघन्य
स्थितिबन्ध व आबाधा

३४. नारकायु व देवायुका जघन्य
स्थितिबन्ध व आबाधा

३५. तिर्थगायु और मनुष्यायुका

३६. जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा